(2022) 4 **एस.सी.आर.** 190

के. श्रीनिवासप्पा और अन्य

विरूद्ध

एम. मल्लम्मा और अन्य

सिविल अपील संख्या 3486-3488/2022

18 मई 2022

एम.आर. शाह एवं बी.वी. नागरत्ना, न्यायाधीशगण

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908: आदेश 23 नियम 2- वाद में समझौता- वाद के पक्षकारों के बीच लोक अदालत द्वारा दर्ज किया गया समझौता- उसके विरुद्ध दायर रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आदेश को वापस लेना - बरकरार रखने की योग्यता- अभिनिर्धारितः लोक अदालत के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा बिना किसी तर्क युक्त कारण के एक आकस्मिक तरीके से निरस्त नहीं किया जा सकता - एक समझौते को वापस लेने के लिए ठोस कारणों की आवश्यकता - समझौता अंततः न्यायालय की डिक्री के रूप में परिणत होता है जो एक डिक्री के रूप में लागू किए जाने योग्य होने से पक्षकारों पर अंतिम और बाध्यकारी- अधिनिर्णय हेतु समझौता प्राप्त करने के तरीके में धोखाधड़ी के आरोप पर ही लोक अदालत के अधिनिर्णय के विरुद्ध रिट याचिका चलने योग्य- जब तक धोखाधड़ी का अभिकथन प्रमाणित नहीं, समझौता डिक्री की शर्तों से बचा नहीं जा सकता - आपत्तिकर्ताओं द्वारा धोखाधड़ी करने के निश्चयाक प्रमाण के अभाव में उच्च न्यायालय द्वारा समझौता डिक्री को अपास्त नहीं किया जा सकता था- लोक अदालत के आदेश के निष्कर्षों पर विचार किए बिना आदेश को अपास्त कर देने का उच्च न्यायालय का निर्णय स्थिर रखे जाने योग्य नहीं- उच्च

न्यायालय का ऐसा निर्णय पक्षकारों के मध्य समझौते अथवा सहमति के आधार पर पारित आदेशों की शुद्धता और अंतिमता के सरंक्षण के सिध्दांत के विरुद्ध - उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया गया और लोक अदालत का निर्णय बहाल किया गया- विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987-धारा-21

अपीलों को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया-

1.1 लोक अदालत के आदेश को रद्द करते हुए उच्च न्यायालय के फैसले से कोई कारण नहीं मिला, जिसके तहत समझौते की शर्तों को दर्ज किया गया था। दर्ज किए गए किसी समझौते को वापस लेने के लिए ठोस कारणों की आवश्यकता होगी। इसका कारण यह है कि समझौता अंततः न्यायालय की डिक्री में परिणत होगा जिसे किसी मामले के निर्णय पर पारित डिक्री की तरह ही लागू किया जा सकता है। लोक अदालत के समक्ष दर्ज किए गए समझौते के मामले में भी यह सच है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, **1987** की धारा **21** लोक अदालत के अधिनिर्णय को सिविल कोर्ट की डिक्री के समतुल्य करती है और लोक अदालत द्वारा पारित समझौते के अधिनिर्णय में अंतिमता का तत्व लागू करती है। जब लोक अदालत समता और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए, किसी मुकदमे के पक्षकारों के बीच हुए समझौते के आधार पर मामलों का निपटारा करती है, तो लोक अदालत का ऐसा प्रत्येक अधिनिर्णय सिविल न्यायालय की डिक्री माना जाएगा और ऐसी डिक्री पक्षकारों पर अंतिम और बाध्यकारी होगी । लोक अदालत के अधिनिर्णय से जुड़ी अंतिमता के तत्व को देखते हुए, यह भी पता चलता है कि ऐसे अधिनिर्णय के खिलाफ सीपीसी की धारा **96** के तहत कोई अपील नहीं होगी **(**पैरा **27, 28)**

1.2 लोक अदालत के अधिनिर्णय के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी, खासकर जब ऐसी रिट याचिका समझौता अधिनिर्णय प्राप्त करने के तरीके में धोखाधड़ी का आरोप लगाते हुए दायर की गई हो, एक रिट न्यायालय किसी भी तर्क को खारिज करते हुए आकस्मिक तरीके से लोक अदालत के आदेश को रद्द नहीं कर सकती है। लोक अदालत के अधिनिर्णय को ऐसे अधिनिर्णय में दर्ज तथ्यों को धोखाधड़ी के आधार पर अपास्त किए बिना उलटा या रद्द नहीं किया जा सकता है।(पैरा 29)

1.3 लैटिन कहावत "सेसेंटे रेशने लेजिस सेसैट इप्सा लेक्स" का अर्थ है "कारण कानून की आत्मा है, और जब किसी विशेष कानून का कारण समाप्त हो जाता है, तो कानून भी समाप्त हो जाता है " । किसी न्यायालय, यहां तक कि एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय के कारणों को बताने का कर्तव्य है । (पैरा 30-31)

1.4 लोक अदालत ने 07 जुलाई 2012 के अपने अधिनिर्णय में दर्ज किया कि पक्षकारों ने स्वीकार किया था कि समझौता याचिका की अंतर्वस्तु की शर्तों को सुनाने और उन्हें कन्नड़ भाषा में समझाने के बाद वे स त्य और सही थी। इसके अलावा, यह भी नोट किया गया कि समझौता वादी क्रमांक -1 द्वारा अपने दो नाबालिग बच्चों की ओर से उनके हिस्सों की सुरक्षा के लिए और उनके लाभ हेतु दर्ज किया गया था। लोक अदालत द्वारा वादी क्रमांक-1 के नाबालिग बच्चों के हितों की रक्षा करना मान्य करते हुए समझौते की शर्तों को अनुमति दी गई। वादी क्रमांक-1 की ओर से वर्तमान मामले में कोई आपत्ति नहीं की गई है। लोक अदालत ने 27 अप्रैल 2013 के अपने आदेश में वादी क्रमांक 4-6 द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध लगाए गए धोखाधड़ी के आरोपों को खारिज कर दिया और दर्ज किया गया कि वादी क्र. 4-6 ने इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया कि उनमें से किसी ने भी 7 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष कोई आपत्ति क्यों नहीं उठाई। आगे यह पाया गया कि वादी क्र. 4-6, समझौते के संदर्भ में

बड़ी रकम स्वीकार करने के बाद, उसकी शर्तों से पीछे नहीं हट सकते। यह वादी क्रमांक 4-6 का मामला नहीं है कि समझौते के संदर्भ में उन्हें प्रत्येक को 30,00,000/- तीस लाख रुपये की राशि नहीं मिली थी । इसके अलावा, यह उनका मामला नहीं है कि ऐसी राशि प्रतिवादियों को पूरी या आंशिक रूप से वापस कर दी गई है। हालांकि वादी क्र.-4, ने कहा कि यह जानने पर कि 07 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष की गई कार्यवाही समझौते के संबंध में थी, उसने आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, वह इस बारे में कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रही कि उसने उक्त तिथि को लोक अदालत को सूचित क्यों नहीं किया कि समझौता याचिका पर उसके हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त कर लिए गए थे। वादी क्र.-4-6 ने 07 जुलाई, 2012 को लोक अदालत के समक्ष स्वीकार किया था कि समझौता याचिका की अंतर्वस्तु को जब उसे कन्नड़ में पढ़कर सुनाया और समझाया गया था तब वे सत्य और सही थी । वादी क्र . 4-6 ने विशेष रूप से स्वीकार किया कि अन्य वाद अनुसूची संपत्तियों में उनके अधिकार , स्वत्व और हित को त्यागने के बदले उन्हें प्रत्येक को 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) की राशि प्राप्त हुई थी, जैसा कि समझौता याचिका में उल्लेख किया गया है। यदि , वास्तव में, वादी क्रमांक 4-6 के हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त किये गये थे, तो समझौते की शर्तों के अनुसार प्रत्येक द्वारा प्राप्त 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) की राशि उन्हें वापस लौटानी चाहिए थी। ऐसा न करने पर वादी क्र. 4-6 यह स्थापित करने में विफल रहे कि समझौता याचिका पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करने की दृष्टि से, प्रतिवादियों द्वारा उनके साथ कोई धोखाधड़ी की गई थी। वादपत्र के अवलोकन पर, यह पाया जाता है कि वाद अनुसूची संपत्ति की 13 वस्तुओं का अलग-अलग मूल्यांकन था और इसलिए वादियों के वाद अनुसूची की सम्पत्तियों के हिस्से एक साथ लिए गए होते। हालाँकि, वादी क्रमांक 4-6 द्वारा प्रत्येक ने 30 लाख रुपये की राशि स्वीकार की। सम्पूर्ण वाद अनुसूची

संपत्तियों में अपना अधिकार, स्वत्व और हित त्यागकर वाद की वस्तुओं के संबंध में एक मौद्रिक हिस्सा प्राप्त करने के बाद, वादीगण ने सम्पूर्ण वाद वस्तुओं के संबंध में अपने अधिकार, स्वत्व और हित को त्यागने का फैसला किया था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में दिनांक 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के फैसले को रद्द करने के संदर्भ में मामले के उपरोक्त तथ्यों पर विचार नहीं किया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 27 अप्रैल, 2013 में दिए गए कारणों पर भी विचार नहीं किया है जिसके द्वारा लोक अदालत की डिक्री पर वादी क्रमांक 4-6 द्वारा उठाई गई आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था। (पैरा 32)

1.5 जहां किसी समझौते के पक्षकार के खिलाफ धोखाधड़ी का आरोप लगाया जाता है, तो उक्त आरोप को दृढ़ता से साबित करना होगा , ताकि इस आधार पर समझौते से बचा जा सके कि ऐसे पक्षकार को समझौते में शामिल होने के लिए प्रेरित करने के लिए किसी पक्ष के साथ धोखाधड़ी की गई थी।। इसी तरह, समझौता डिक्री की शर्तों को तब तक टाला नहीं जा सकता, जब तक कि धोखाधड़ी का आरोप साबित न हो जाए। आपत्तिकर्ताओं की ओर से धोखाधड़ी के किसी भी निर्णायक साक्ष्य के अभाव में, उच्च न्यायालय वर्तमान मामले में समझौता डिक्री को रद्द नहीं कर सकता था। (पैरा 35)

1.6 लोक अदालत के आदेश जिसमें दोनों के बीच समझौता दर्ज किया गया था, को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के फैसले हेतु कोई आधार नहीं दर्शाया गया था। लोक अदालत के आदेश के निष्कर्षों पर विचार किए बिना, उक्त आदेश को रद्द करने के उच्च न्यायालय के फैसले को स्थिर नहीं रखा जा सकता है। उच्च न्यायालय का ऐसा निर्णय कानून के स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है जो पार्टियों के बीच समझौते या सहमति के आधार पर आदेशों की पवित्रता और अंतिमता की रक्षा करना चाहते हैं।

इसलिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के आक्षेपित फैसले को रद्द किया जाता है और लोक अदालत का आदेश जिसमें वाद के पक्षकारों के बीच समझौता दर्ज किया गया था को बहाल किया जाता है । **(पैरा 36, 37)**

संदर्भित मामले:

श्रीमती सावर्णी बनाम श्रीमती इंदर कौर और अन्य, 1996 (6) एससीसी 223 - संदर्भित

पीटी थॉमस बनाम थॉमस जॉब, (2005) 6 एससीसी 478 - विश्वसनीय [पैरा 28] - संदर्भित

श्री अदमार मठ के परम पूज्य श्री स्वामीजी बनाम आयुक्त, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती विभाग, (1979) 4 एससीसी 642 - संदर्भित

क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मसूद अहमद खान और अन्य, (2010) 9 एससीसी 496 - संदर्भित

रूबी सेल्स एंड सर्विसेज प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1994) 1 एससीसी 531 - संदर्भित

पुष्पा देवी भगत (मृत) एलआर के माध्यम से साधना राय बनाम राजिंदर सिंह और अन्य, (2006) 5 एससीसी 566 - संदर्भित

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या 3486-3488/2022

कर्नाटक उच्च न्यायालय बेंगलोर के रिट याचिका क्र.-20607-09/2013 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 17-04-2015 से उद्धृत

अपीलार्थीओं के लिए: सुश्री पृथा श्रीकुमार, अनिरुद्ध गोटेटी, अभिनव रामानंद अधिवक्ता।

प्रत्यर्थियों के लिए: सुश्री मंजू जेटली अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा पारित किया गया

नागरत्ना, न्यायाधीश

1. ये अपीलें कर्नाटक उच्च न्यायालय बेंगलुरु द्वारा रिट याचिका क्रमांक - 20607/2013, 20608/2013 और 20609/2013 में पारित 17 अप्रैल, 2015 के फैसले और आदेश को चुनौती देती हैं, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने वादी क्रमांक- 4 से 6 द्वारा दायर रिट याचिकाओं का निपटारा किया है और दिनांक 7 जुलाई 2012 के आदेश को वापस ले लिया है जिसके द्वारा मूल वाद क्रमांक-876/2004 के पक्षों के बीच लोक अदालत द्वारा समझौता दर्ज किया गया था , जो कि वादी क्रमांक -1 से 6 द्वारा सिविल जज (जूनियर डिवीजन), ग्रामीण जिला, बैंगलोर के न्यायालय की फाइल पर संस्थित विभाजन और अलग कब्जे के लिए एक मुकदमा था।

2. सुविधा के लिए, पक्षकारों को मूल वाद क्रमांक-876/2004 में उनके क्रम और स्थिति के अनुसार संदर्भित किया जाएगा।

3. संक्षेप में वर्तमान अपील को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि वादी क्रमांक - 1, 4, 5, 6 और प्रतिवादी क्रमांक- 2 से 5 एम. कृष्णप्पा और एम. मल्लम्मा (प्रतिवादी क्रमांक -01) की संतान हैं। वादी क्रमांक 2 और 3 वादी क्रमांक 1, अर्थात्, के. देवराज के पुत्र हैं। वादी ने सिविल जज, जूनियर डिवीजन, ग्रामीण जिला बैंगलोर की अदालत की फाइल पर मूल वाद क्रमांक-876/2004 के तहत विभाजन और अलग कब्जे के लिए एक मुकदमा दायर किया, जिसमें कहा गया था कि मुकदमा अनुसूची संपत्तियां एम. कृष्णप्पा द्वारा अर्जित की गई थीं और एम. कृष्णप्पा के निधन तक वादी और प्रतिवादी के संयुक्त कब्ज़ा और उपभोग में थी। एम. कृष्णप्पा की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी नं. 1 के पास मुकदमे की अनुसूची संपत्तियों का कब्जा था और वह वादी के हितों के लिए हानिकारक तरीके से काम कर रहा था और उसने मुकदमे के प्रत्येक पक्ष के अधिकारों को स्पष्ट करने हेतु विभाजन कराये बिना संपत्तियों को अंतरित करने का

प्रयास किया था। संपत्ति के बंटवारे के लिए वादी के अनुरोधों पर प्रतिवादियों द्वारा उसे अंतरित करने की धमकियां दी गई।

उपरोक्त कथनों के साथ वादी ने वाद अनुसूची संपत्तियों में अपने हिस्सों के विभाजन और अलग कब्जे की मांग की थी।

4. मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, 30 जून, 2012 को, वादी और प्रतिवादी द्वारा संयुक्त रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXIII नियम 3 (इसके बाद संक्षेप में "सीपीसी") के तहत विचारण न्यायालय में एक समझौता याचिका दायर की गई जिसमें उन्होंने कहा कि मुकदमे के पक्षकारों ने , रिश्तेदारों और शुभचिंतकों के हस्तक्षेप पर, विभाजन संबंधी विवादों में मध्यस्थता उपरांत उनके विवादों को निम्नलिखित तरीके से आपस में सुलझाया गया:

(i) कि वादी वाद अनुसूची संपत्तियों के संबंध में अपने अधिकार , स्वत्व, हित और दावे को त्याग देंगे और उसके प्रतिफल स्वरूप , प्रतिवादियों ने वादी को निम्नलिखित राशि का भुगतान किया था:

(ए) रु. 1,10,00,000/- (एक करोड़, दस लाख रुपये) का भुगतान के. देवराज, वादी क्रमांक-1 के पक्ष में किया गया।

(बी) रु. 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) का भुगतान के. सुगुनम्मा, वादी क्रमांक-4 के पक्ष में क्रमशः दो चेक रु . 2,50,000/- (दो लाख पचास हजार रूपये) और 27,50,000/- (सत्ताईस लाख और पचास हजार रूपये) के माध्यम से किया गया।

(सी) रु. 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) का भुगतान के. शांतम्मा, वादी क्रमांक-5 के पक्ष में दो चेक क्रमशः 2,50,000/- (दो लाख पचास हजार रूपये)

और 27,50,000/- (सत्ताईस लाख और पचास हजार रूपये) के माध्यम से किया गया।

(डी) रु. 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) का भुगतान के. गीता, वादी क्रमांक-6 के पक्ष में दो चेक क्रमशः 2,50,000/- (दो लाख पचास हजार रूपये) और 27,50,000/- (सत्ताईस लाख और पचास हजार रूपये) के माध्यम से किया गया।

(ई) रु. 4,00,000/- (चार लाख रुपये) का भुगतान मल्लम्मा, प्रतिवादी क्रमांक -1 के पक्ष में किया गया ।

(ii) प्रतिवादी, संयुक्त रूप से और अलग-अलग, वाद अनुसूची संपत्तियों पर पूर्ण अधिकार, स्वत्व और हित का आनंद लेने के हकदार होंगे।

(iii) प्रतिवादी सं. 2 से 5 तक वाद अनुसूची संपत्तियों के संबंध में खाता , नामांतरण और अधिकारों के अभिलेख को अपने नाम पर स्थानांतरित करने के हकदार होंगे।

(iv) वाद अनुसूची संपत्तियों को प्रतिवादी क्रमांक 2 से 5 द्वारा धारित किया जाएगा जो उसके संयुक्त स्वामियों के रूप में तब तक बने रहेंगे , जब तक कि उक्त प्रतिवादियों के बीच अंतर-विभाजन नहीं हो जाता। जहां तक वादी का संबंध है, उक्त संपत्ति विभाजन के लिए उपलब्ध नहीं होगी , क्योंकि वाद संपत्ति पर उनका अधिकार प्रतिवादी क्रमांक 2 से 5 के पक्ष में प्रतिफलार्थ अंतरित किया गया था।

(v) वाद अनुसूची संपत्तियों पर उनके अधिकार, स्वत्व और हित के संबंध में वादी स्वयं या अपने हित-उत्तराधिकारियों या उत्तराधिकारियों के माध्यम से कोई कृत्य या कार्यवाही शुरू नहीं करने का वचन देते हैं।

(vi) समझौता वादी क्रमांक-1 द्वारा अपने दो नाबालिग बच्चों की ओर से और उनके लाभ के लिए, उनके हिस्से की सुरक्षा के लिए किया गया था।

5. 26 जून 2012 को वादी क्रमांक-4 द्वारा ऊपर बताए अनुसार वादी और प्रतिवादियों के बीच हुए समझौते के एक हिस्से के रूप में उसे प्राप्त दो चेक भुनाए गए।

6. पक्षों के बीच आपसी समझौते को देखते हुए, मामले को विचारण न्यायालय द्वारा लोक अदालत में भेजा गया था। पक्षों को सुनने के बाद , लोक अदालत ने 07 जुलाई, 2012 को एक आदेश पारित किया, जिसमें उसके समक्ष प्रस्तुत समझौता ज्ञापन के संदर्भ में विभाजन और अलग कब्जे के वाद को स्वीकार किया । लोक अदालत ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किये:

(i) विवाद के सभी पक्ष समझौते के ज्ञापन के संदर्भ में वाद अनुसूची संपत्ति के विभाजन के संबंध में विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के लिए सहमत हुए थे।

(ii) समझौते की शर्तों को उनके अधिवक्ताओं की उपस्थिति में पक्षकारों को उनके द्वारा ज्ञात और समझी जाने वाली भाषा में पढ़ा और समझाया गया था और पक्षकारों ने इसे सत्य और सही माना था।

(iii) चूंकि समझौता वादी क्रमांक-1 के नाबालिग बच्चों के पक्ष में था , उसे उनकी ओर से समझौता करने की अनुमति दी गई थी।

उपरोक्त निष्कर्षों के मद्देनजर, सीपीसी के आदेश XXXII नियम 3 के तहत पक्षकारों द्वारा दायर आवेदन को अनुमति दी गई और स्वीकार कर लिया गया।

7. दो दिन बाद, 09 जुलाई 2012 को, केवल वादी क्रमांक 4-6 ने लोक अदालत के समक्ष एक शपथपत्र दायर किया जिसमें कहा गया कि प्रतिवादियों ने उनके साथ धोखाधड़ी की और समझौते की शर्तों पर उनकी सहमति प्राप्त करने के लिए उन्हें गुमराह किया।

8. लोक अदालत ने वादी क्रमांक-4 से 6 द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्र पर विचार किया और दिनांक 13 जुलाई, 2012 के एक आदेश द्वारा, पार्टियों के समझौते को दर्ज करने वाले आदेश को रद्द करने के लिए उसमें की गई प्रार्थना को खारिज कर दिया। लोक अदालत ने कहा कि समझौता दर्ज करने का आदेश समझौते के सभी पक्षों की सहमति को विधिवत दर्ज करने के बाद पारित किया गया था और इसलिए , समझौते को रद्द करने की प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सकता है।

9. लोक अदालत के आदेश दिनांक 13 जुलाई 2012 से क्षुब्ध होकर वादी क्रमांक- 4 ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष डब्लूपी क्रमांक 25989/2012 के रूप में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की गई कि 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के आदेश जिसमें पक्षकारों का समझौता दर्ज किया गया था, को खारिज कर दिया जाए । वादी क्रमांक- 4 ने उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष निवेदन किया कि यद्यपि उसने विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत समझौता याचिका पर हस्ताक्षर किए थे और उसके बाद लोक अदालत को संदर्भित किया गया था, आदेश पत्र दिनांक 07 जुलाई, 2012, जिसे समझौता शर्तों के अनुसार तैयार किया गया था, पर उसके हस्ताक्षर नहीं थे। समझौता याचिका पर वादी

क्रमांक-4 द्वारा प्रतिवादियों द्वारा की गई धोखाधड़ी के परिणामस्वरूप हस्ताक्षर किए गए थे।

10. प्रतिवादियों की ओर से धोखाधड़ी के आरोप के आलोक में, उच्च न्यायालय ने 24 जनवरी, 2013 के एक आदेश द्वारा, डब्लूपी क्रमांक 25989/2012 का निपटारा करते हुए मामले को सिविल जज (जूनियर डिवीजन) बेंगलुरु को भेजकर प्रतिवादियों के खिलाफ लगाए गए धोखाधड़ी के आरोप पर जांच करने और निष्कर्ष दर्ज करने के लिए मामले को लोक अदालत में संदर्भित करने का निर्देश दिया गया। उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि उक्त प्रक्रिया लोक अदालत द्वारा तीन महीने की अवधि के भीतर पूरी की जाए।

11. उच्च न्यायालय द्वारा 24 जनवरी, 2013 के आदेश के तहत जारी निर्देशों के अनुसार, मामला विचारण न्यायालय द्वारा लोक अदालत, ग्रामीण जिला, बैंगलोर को भेजा गया। वादी क्रमांक- 4 से 6 ने समझौते पर अपनी आपत्तियाँ दर्ज करते हुए कहा कि समझौता याचिका पर उनके हस्ताक्षर प्रतिवादियों की ओर से धोखाधड़ी से प्राप्त किए गए थे। यह कहा गया था कि मूल वाद क्रमांक- 876/2004 के लंबित रहने के दौरान, विभाजन की जाने वाली संपत्तियों की अनुसूची में शामिल एक संपत्ति मैसर्स त्रिशूल बिल्डटेक एंड इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड के पक्ष में 23 जून, 2012 को पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से रु. 2,70,00,000/- (दो करोड़ सत्तर लाख रुपये) में बेची गई थी। वादी क्रमांक 4-6 को भुगतान की गई 30,00,000/- रुपये (तीस लाख रुपये) की राशि, उक्त बिक्री के लिए उनके हिस्से की प्रतिफल राशि थी। उक्त संपत्ति की बिक्री की तारीख पर, प्रतिवादियों के कहने पर, इस आड़ में कि उन्हें कर अधिकारियों को प्रस्तुत करना आवश्यक था, वादी क्रमांक 4-6 द्वारा कई कागजात पर हस्ताक्षर किए गए थे । वादी क्रमांक 1 और प्रतिवादियों ने मिलकर साजिश रची और उनकी जानकारी

के बिना, वादी क्रमांक 4-6 का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिवक्ताओं की सेवाएं लीं। यह भी आरोप लगाया गया कि प्रतिवादियों ने वादी क्रमांक 4-6 को यह विश्वास दिलाया कि वे 23 जून, 2012 को की गई बिक्री के संबंध में कर अधिकारी के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं। जबकि वास्तव में, वे समझौता याचिका के संबंध में लोक अदालत के समक्ष उपस्थित हो रहे थे। वादी क्रमांक 4 ने कहा कि लोक अदालत के समक्ष यह महसूस करने पर कि कार्यवाही एक समझौता याचिका से संबंधित थी, उसने 07 जुलाई, 2012 के आदेश पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया , जिसमें लोक अदालत द्वारा समझौते की शर्तों को दर्ज किया गया था। वादी क्रमांक 5 और 6 ने कहा कि उन्हें समझौता याचिका और 07 जुलाई, 2012 की ऑर्डर शीट दोनों पर हस्ताक्षर करने में गुमराह किया गया था।

12. पक्षों को सुनने के बाद, लोक अदालत ने 27 अप्रैल, 2013 को एक आदेश द्वारा वादी क्रमांक 4-6 द्वारा दायर आपत्तियों को खारिज कर दिया एवं लोक अदालत के आदेश दिनांक 07 जुलाई 2012, जिसमें समझौते की शर्ते दर्ज थी, की पुष्टि की गयी।

13. लोक अदालत के आदेश दिनांक 27 अप्रैल 2013 से क्षुब्ध होकर वादी क्रमांक- 4-6 ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष डब्लूपी नंबर 20607-20609/2013 के रूप में रिट याचिकाएं दायर की, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ प्रार्थना की गई कि मूल वाद क्रमांक- 876/2004 से संबंधित संपूर्ण रिकॉर्ड मंगाए जाएं और लोक अदालत के दिनांक 07 जुलाई 2012 एवं 27 अप्रैल 2013 के आदेश को निरस्त किया जाये।

14. दिनांक 17 अप्रैल, 2015 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु के विद्वान एकल न्यायाधीश ने वादी क्रमांक 4-6 द्वारा दायर रिट याचिका का निपटारा कर दिया। 07 जुलाई 2012 को लोक अदालत द्वारा पारित समझौते के आदेश

को वापस लेते हुए उच्च न्यायालय ने मामले को जैसे कि पक्षकारों के बीच समझौता हुआ ही नहीं था, कानून के अनुसार निपटाने के लिए सिविल जज (जूनियर डिवीजन), बेंगलुरु को मामला भेज दिया। उच्च न्यायालय के फैसले जिसके तहत लोक अदालत के समझौता दर्ज करने के आदेश को रद्द कर दिया गया , से व्यथित होकर प्रतिवादी क्रमांक- 2-5 ने वर्तमान अपीलों को प्रस्तुत किया है।

15. हमने अपीलार्थीयों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध गोटेटी और प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता सुश्री मंजू जेटली को सुना है और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

16. अपीलार्थीयों के विद्वान अधिवक्ता ने सबसे प्रारंभ में तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के आदेश को रद्द करने में सही नहीं किया था, जिसके तहत पार्टियों का समझौता दर्ज किया गया था। उक्त तर्क को विस्तृत करते हुए, यह कहा गया कि लोक अदालत ने 07 जुलाई, 2012 के अपने आदेश में लिखा था कि समझौते के प्रत्येक पक्ष ने जब उसे कन्नड़ भाषा में पढ़ा और समझाया गया था शर्तों पर सहमति व्यक्त की थी, और स्वीकार किया था कि समझौता याचिका की अंतर्वस्तु सत्य और सही थी। लोक अदालत ने 27 अप्रैल, 2013 के अपने आदेश में वादी क्रमांक 4-6 द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विस्तार से विचार करने के बाद उन्हें खारिज कर पक्षकारों के बीच समझौते की वैधता को बरकरार रखा था। यह निवेदन किया गया कि लोक अदालत का आदेश दिनांक 27 अप्रैल, 2013 पक्षों की दलीलों की विस्तृत जांच के बाद पारित किया गया था और लोक अदालत ने वादी क्रमांक 4-6 द्वारा उठाई गई आपत्तियों को सही ढंग से खारिज कर दिया था। हालाँकि , उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने, किसी तर्क के बिना आकस्मिक और गूढ

तरीके से, लोक अदालत के आदेश को उलट दिया था जिसमें पक्षों का समझौता दर्ज किया गया था।

17. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि लोक अदालत के प्रत्येक अधिनिर्णय को विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 21 के तहत दिए गए प्रावधान के अनुसार सिविल कोर्ट का डिक्री माना जाता है और इसलिए इसे उच्च न्यायालय द्वारा बिना कारण के गूढ़ आदेश द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता है। अपीलार्थीयों के विद्वान अधिवक्ता ने श्रीमती **सावर्णी बनाम श्रीमती इंदर कौर और अन्य, 1996 (6) एससीसी 223** पर भरोसा यह तर्क देने के लिए किया कि जब एक सिविल कोर्ट अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों की विस्तृत चर्चा के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुंचा था, तो एक अपीलीय न्यायालय बिना किसी तर्कसंगत निर्णय के सिविल न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने के लिए सिविल न्यायालय के फैसले को रद्द नहीं कर सकती थी। उस संदर्भ में, यह आगे कहा गया कि 07 जुलाई, 2012 की लोक अदालत का निर्णय, सिविल न्यायालय के डिक्री की प्रकृति में होने के कारण, उच्च न्यायालय द्वारा लोक अदालत के निष्कर्षों को बिना किसी तर्कसंगत निर्णय के रद्द नहीं किया जा सकता था।

18. अपीलार्थीयों के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रतिवादी के पक्ष में वाद अनुसूची संपत्तियों में स्वत्व और हित के अपने सभी अधिकारों को त्यागने के लिए प्रतिफल स्वरूप वादी क्रमांक- 4-6 प्रत्येक ने 30,00,000/- तीस लाख रुपये की राशि स्वीकार करके समझौते की शर्तों का लाभ उठाया और वे उन्हें जारी किए गए चेकों को भुनाकर बाद के समय में समझौते की शर्तों से मुकर नहीं सकते थे। ये आपत्तिकर्ता एक ही समय में अनुमोदन और भर्त्सना नहीं कर सकते थे। उच्च न्यायालय ने समझौते की शर्तों के तहत उन्हें भुगतान की गई राशि वापस करने के लिए वादी क्रमांक 4-6 को कोई निर्देश जारी किए बिना समझौते को रद्द करने में गलती की थी।

19. यह कहा गया था कि लोक अदालत ने 07 जुलाई, 2012 और 27 अप्रैल, 2013 के अपने आदेशों में तथ्य के कई निष्कर्ष दर्ज किए थे, जिनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था।

20. वादी क्रमांक- 4-6 ने यह बताने का कोई प्रयास नहीं किया कि उन्होंने 7 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष यह क्यों नहीं बताया कि उनके हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त किये गये थे। प्रतिवादियों के खिलाफ लगाए गए धोखाधड़ी के आरोपों को खारिज करते हुए मामले के इस पहलू को लोक अदालत द्वारा सही ढंग से पहचाना गया । हालाँकि, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय लोक अदालत के किसी भी निष्कर्ष का कोई संदर्भ नहीं दिया।

उपरोक्त दलीलों के साथ, यह प्रार्थना की गई कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित फैसले को रद्द कर दिया जाए और लोक अदालत के दिनांक 07 जुलाई, 2012 के आदेश को बहाल किया जाए, जिसके तहत पक्षों के बीच समझौता दर्ज किया गया था।

21. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों की विद्वान अधिवक्ता सुश्री मंजू जेटली के अनुसार उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता वाली किसी भी दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। उच्च न्यायालय ने समझौते की शर्तों हेतु धोखाधड़ी का अभ्यास करके प्राप्त की गई वादी क्रमांक 4-6 की सहमति को ध्यान में रखते हुए, लोक अदालत द्वारा पारित दिनांक 07 जुलाई, 2012 के आदेश को सही ढंग से रद्द कर दिया।

22. यह कहा गया कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान देने के बाद आक्षेपित निर्णय पारित किया कि वादी क्रमांक 4 ने 07 जुलाई 2012 के आदेश पत्र पर

हस्ताक्षर नहीं किए थे, जिसमें लोक अदालत ने पक्षों के समझौते को दर्ज किया था , हालांकि उसने लोक अदालत के समक्ष प्रस्तुत समझौता याचिका पर हस्ताक्षर किए थे।

23. प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा अगला तर्क यह दिया गया कि 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) की राशि जो वादी क्रमांक 4-6 को भुगतान किया गया, वह संपत्ति की बिक्री के लिए उनका हिस्सा था जो पक्षकारों के बीच विभाजित की जाने वाली संपत्तियों की अनुसूची में शामिल था। पक्षकारों के बीच समझौते के संबंध में उक्त राशि प्राप्त नहीं हुई थी और इसलिए , समझौता अभिलिखित करने के आदेश पर उनकी आपत्तियों को खारिज करने का आधार नहीं बन सका।

24. सुश्री मंजू जेटली ने आगे कहा कि इस तथ्य कि वादी क्र .- 4 ने समझौता याचिका पर हस्ताक्षर करने के बाद 7 जुलाई, 2012 के आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था, से यह स्थापित हो जाएगा कि उस समय उसे एहसास हुआ कि प्रतिवादियों ने कर अधिकारियों को प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर लेने की आड़ में धोखाधड़ी से समझौता याचिका पर उसके हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए थे।

जहां तक वादी क्रमांक-5 और 6 का संबंध है यह कहा गया कि उन्हें समझौता याचिका और साथ ही 07 जुलाई, 2012 की ऑर्डर शीट दोनों पर हस्ताक्षर करने में गुमराह किया गया था।

25. यह कहा गया कि वादी नं. 4-6 ने 09 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष एक शपथ पत्र प्रस्तुत किया था, जिसमें कहा गया था कि प्रतिवादियों ने उनके साथ धोखाधड़ी की है और समझौते की शर्तों पर उनकी सहमति प्राप्त करने के लिए उन्हें गुमराह किया है। यह तथ्य कि लोक अदालत के दिनांक 07 जुलाई, 2012 के आदेश के बाद दो दिनों की अल्प अवधि के भीतर ऐसा हलफनामा प्रस्तुत किया गया

था, यह स्थापित करेगा कि वादी क्रमांक - 4-6 ने प्रतिवादियों की ओर से की गई धोखाधड़ी को लोक अदालत के ध्यान में लाने के लिए तत्काल कदम उठाए। इसलिए, यह तथ्य कि वादी क्रमांक- 4-6 ने 07 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष यह नहीं बताया कि उनके हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त किए गए थे, प्रतिवादियों की ओर से धोखाधड़ी के उनके आरोपों को खारिज करने का आधार नहीं बन सका।

उपरोक्त तर्कों के साथ, यह कहा गया कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के आदेश को रद्द कर दिया गया था, में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी।

26. उच्च न्यायालय के आक्षेपित फैसले द्वारा लोक अदालत के दिनांक 07 जुलाई, 2012 के आदेश को बहुत ही सरसरी और गूढ तरीके से , बिना कोई कारण बताए, रद्द कर देने की अपीलार्थीयों के विद्वान अधिवक्ता की दलील को ध्यान में रखते हुए 17 अप्रैल, 2015 का आक्षेपित निर्णय पूर्णरूपेण निम्नानुसार निकाला किया गया है-

"आदेश

1. इन रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं ने लोक अदालत दिनांक 7.7.2012 के आदेश पत्र को चुनौती दी है। याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई समझौता याचिका पर आपत्तियों की अस्वीकृति और 27.04.2013 को लोक अदालत, बैंगलोर ग्रामीण, बैंगलोर के विद्वान न्यायिक और गैर न्यायिक सदस्यों द्वारा ओएस नंबर 876/2004 में पारित आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष हैं। विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय से अनुरोध किया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पारित समझौते के आदेश को रद्द किया जाए।

2. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता लोक अदालत द्वारा पारित आदेश का समर्थन करते हैं और इन रिट याचिकाओं को खारिज करने का अनुरोध करते हैं।

याचिकाकर्ता प्रतिवादी क्रमांक 6 से 9 हैं और याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि धोखाधड़ी करके समझौता याचिका दायर की गई थी। याचिकाकर्ता क्रमांक 1 का कहना है कि उसने पार्टियों के बीच हुई समझौता याचिका पर बिल्कुल भी हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

3. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं समझौते के आदेश को वापस लेना उचित समझता हूं। लोक अदालत द्वारा पारित आदेश दिनांक 7.7.2012 निरस्त किया जाता है। मामला विद्वान सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) बेंगलुरु को संदर्भित किया जाता है और मामले को, जैसे कि पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं हुआ है, कानून के अनुसार निपटाने का निर्देश दिया जाता है, ।

तदनुसार, इन याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।"

27. सबसे पहले, हम देखते हैं कि हमें 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के आदेश को रद्द करने वाले उच्च न्यायालय के फैसले से कोई कारण नहीं मिला, जिसके तहत समझौते की शर्तों को दर्ज किया गया था। दर्ज किए गए किसी समझौते को वापस लेने के लिए ठोस कारणों की आवश्यकता होगी। इसका कारण यह है कि समझौता अंततः न्यायालय की डिक्री में परिणत होगा जिसे किसी मामले के निर्णय पर पारित डिक्री की तरह ही लागू किया जा सकता है। लोक अदालत के समक्ष दर्ज किए गए समझौते के मामले में भी यह सच है। इस संबंध में , विधिक सेवा प्राधिकरण

अधिनियम, 1987 की धारा 21 का संदर्भ लेना उचित होगा, जिसे निम्नानुसार निकाला गया है:

"**21. लोक अदालत का अधिनिर्णय:**

(1) लोक अदालत का प्रत्येक अधिनिर्णय, यथा स्थिति, सिविल न्यायालय की डिक्री या किसी अन्य न्यायालय का आदेश समझा जाएगा और जहां किसी लोक अदालत द्वारा धारा 20 की उप-धारा (1) के अधीन उसको निर्दिष्ट किसी मामले में समझौता या परिनिर्धारण किया गया है वहाँ ऐसे मामले में संदत्त न्यायालय फीस, न्यायालय फीस अधिनियम 1870 (1870 का 7) के अधीन उपबंधित रीति से लौटा दी जाएगी ।

(2) लोक अदालत द्वारा किया गया प्रत्येक अधिनिर्णय अंतिम और विवाद के सभी पक्षकारों पर आबद्धकर होगा, तथा अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील किसी न्यायालय में नहीं होगी ।

28. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 21 लोक अदालत के अधिनिर्णय को सिविल कोर्ट की डिक्री के समतुल्य करती है और लोक अदालत द्वारा पारित समझौते के अधिनिर्णय में अंतिमता का तत्व लागू करती है। जब लोक अदालत समता और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए, किसी मुकदमे के पक्षकारों के बीच हुए समझौते के आधार पर मामलों का निपटारा करती है, तो लोक अदालत का ऐसा प्रत्येक अधिनिर्णय सिविल न्यायालय की डिक्री माना जाएगा और ऐसी डिक्री पक्षकारों पर अंतिम और बाध्यकारी होगी । लोक अदालत के अधिनिर्णय से जुड़ी अंतिमता के तत्व को देखते हुए, यह भी पता चलता है कि ऐसे अधिनिर्णय के खिलाफ

सीपीसी की धारा 96 के तहत कोई अपील नहीं होगी (द्वारा- पीटी थॉमस बनाम थॉमस जॉब, (2005) 6 एससीसी 478) ।

29. जहाँ हम मानते हैं कि लोक अदालत के अधिनिर्णय के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी, खासकर जब ऐसी रिट याचिका समझौता अधिनिर्णय प्राप्त करने के तरीके में धोखाधड़ी का आरोप लगाते हुए दायर की गई हो , एक रिट न्यायालय किसी भी तर्क को खारिज करते हुए आकस्मिक तरीके से लोक अदालत के आदेश को रद्द नहीं कर सकती है। लोक अदालत के अधिनिर्णय को ऐसे अधिनिर्णय में दर्ज तथ्यों को धोखाधड़ी के आधार पर अपास्त किए बिना उलटा या रद्द नहीं किया जा सकता है।

30. लैटिन कहावत "सेसेंटे रेशने लेजिस सेसैट इप्सा लेक्स" का अर्थ है "कारण कानून की आत्मा है, और जब किसी विशेष कानून का कारण समाप्त हो जाता है, तो कानून भी समाप्त हो जाता है ", यह **श्री अदमर मठ के एचएच श्री स्वामीजी बनाम कमिश्नर, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती विभाग,** (1979) 4 एससीसी 642, के अनुसार भी उपयुक्त है।

31. किसी न्यायालय, यहां तक कि एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय के कारणों को बताने के कर्तव्य के पहलू पर, **क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मसूद अहमद खान और अन्य, (2010) 9 एससीसी 496** में इस न्यायालय के एक फैसले का उल्लेख करना उपयोगी होगा , जिसमें कई निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ 47 में इस बिंदु पर विधि का सारांश दिया। इस मामले के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक सिद्धांत निम्नानुसार निकाले गए हैं:

(ए) कारणों को दर्ज करने पर जोर देने का मतलब न्याय के व्यापक सिद्धांत की पूर्ति करना है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए , बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है।

(बी) कारणों का दर्ज किया जाना न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या यहां तक कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध प्रतिबंध के रूप में भी काम करता है।

(सी) कारण पुनः आश्वस्त करते हैं कि निर्णय-लेने वाले द्वारा प्रासंगिक आधारों पर और अनावश्यक विचारों की उपेक्षा करके विवेक का प्रयोग किया गया है।

(डी) निर्णय लेने की प्रक्रिया में कारण वस्तुतः इतने अपरिहार्य घटक बन गए हैं जितना कि न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहां तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना ।

(ई) कारण उच्चत्तर न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाते हैं।

(एफ) विधि के शासन और संवैधानिक शासन के लिए प्रतिबद्ध सभी देशों में चल रही न्यायिक प्रवृत्ति प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने की जीवनधारा है जो इस सिद्धांत को उचित ठहराती है कि कारण न्याय की आत्मा है।

(छ) इन दिनों न्यायिक या यहां तक अर्ध-न्यायिक राय भी उतनी ही भिन्न हो सकती हैं जितनी उन्हें देने वाले न्यायाधीश और प्राधिकारी। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं , जो कि तर्क द्वारा प्रदर्शित करना है कि

प्रासंगिक कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। न्याय दान की प्रणाली में पक्षकारों का विश्वास बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

(ज) कारण पर जोर देना न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए एक आवश्यकता है।

(i) यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त स्पष्ट नहीं है तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति मिसाल के सिद्धांत या वृद्धिवाद के सिद्धांतों के प्रति वफादार है या नहीं।

(जे) निर्णयों के समर्थन में कारण ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। कारणों का दिखावा या "रबर-स्टैम्प कारण" की तुलना निर्णय लेने की प्रक्रिया के साथ नहीं की जानी चाहिए।

(के) इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक लगाने की अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय निर्माताओं की त्रुटियों की संभावना कम बनाती है बल्कि उन्हें व्यापक जांच के अधीन भी बनाती है। [देखें: *न्यायिक स्पष्टवादिता का बचाव* में डेविड शापिरो, (1987) 100 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731-737]

(एल) सभी सामान्य कानून क्षेत्राधिकारों में निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए , कानून के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता सारगर्भित है और वस्तुतः "उचित प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।

(एम) कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है यानी न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और समझ में आने वाले कारण दिए जाने चाहिए।

यद्यपि उपरोक्त निर्णय राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण आयोग द्वारा एक गूढ आदेश द्वारा एक पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने के संदर्भ में दिया गया था, किसी मामले का निर्णय करते समय कारण बताने की आवश्यकता पर उक्त निर्णय पर भरोसा किया जा सकता है, विशेष रूप से जब वर्तमान मामले में यह बिन्दु उत्पन्न होता है ।

32. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, अब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करेंगे। समझौते की शर्तों के साथ-साथ उभयपक्ष द्वारा दिए गए तर्कों का विवरण ऊपर दिया गया है। इस पर विचार करने पर निम्नलिखित पहलू सामने आएंगे:

(ए) लोक अदालत ने 07 जुलाई 2012 के अपने अधिनिर्णय में दर्ज किया कि पक्षकारों ने स्वीकार किया था कि समझौता याचिका की अंतर्वस्तु की शर्तों को सुनाने और उन्हें कन्नड़ भाषा में समझाने के बाद वे स त्य और सही थी । इसके अलावा, यह भी नोट किया गया कि समझौता वादी क्रमांक-1 द्वारा अपने दो नाबालिग बच्चों की ओर से उनके हिस्सों की सुरक्षा के लिए और उनके लाभ हेतु दर्ज किया गया था । लोक अदालत द्वारा वादी क्रमांक-1 के नाबालिग बच्चों के हितों की रक्षा करना मान्य करते हुए समझौते की शर्तों को अनुमति दी गई। वादी क्रमांक-1 की ओर से वर्तमान मामले में कोई आपत्ति नहीं की गई है।

(बी) लोक अदालत ने 27 अप्रैल 2013 के अपने आदेश में वादी क्रमांक 4-6 द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध लगाए गए धोखाधड़ी के आरोपों को खारिज कर दिया और दर्ज किया गया कि वादी क्र. 4-6 ने इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं

दिया कि उनमें से किसी ने भी 7 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष कोई आपत्ति क्यों नहीं उठाई। आगे यह पाया गया कि वादी क्र . 4-6, समझौते के संदर्भ में बड़ी रकम स्वीकार करने के बाद, उसकी शर्तों से पीछे नहीं हट सकते।

(सी) यह वादी क्रमांक 4-6 का मामला नहीं है कि समझौते के संदर्भ में उन्हें प्रत्येक को 30,00,000/- तीस लाख रुपये की राशि नहीं मिली थी । इसके अलावा, यह उनका मामला नहीं है कि ऐसी राशि प्रतिवादियों को पूरी या आंशिक रूप से वापस कर दी गई है।

(डी) हालांकि वादी क्र.-4, ने कहा कि यह जानने पर कि 07 जुलाई 2012 को लोक अदालत के समक्ष की गई कार्यवाही समझौते के संबंध में थी, उसने आदेश पत्रक पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, वह इस बारे में कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रही कि उसने उक्त तिथि को लोक अदालत को सूचित क्यों नहीं किया कि समझौता याचिका पर उसके हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त कर लिए गए थे।

(ई) वादी क्र.-4-6 ने 07 जुलाई, 2012 को लोक अदालत के समक्ष स्वीकार किया था कि समझौता याचिका की अंतर्वस्तु को जब उसे कन्नड़ में पढ़कर सुनाया और समझाया गया था तब वे सत्य और सही थी ।

(च) वादी क्र. 4-6 ने विशेष रूप से स्वीकार किया कि अन्य वाद अनुसूची संपत्तियों में उनके अधिकार, स्वत्व और हित को त्यागने के बदले उन्हें प्रत्येक को 30,00,000/- (तीस लाख रुपये) की राशि प्राप्त हुई थी, जैसा कि समझौता याचिका में उल्लेख किया गया है।

(छ) यदि, वास्तव में, वादी क्रमांक 4-6 के हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त किये गये थे, तो समझौते की शर्तों के अनुसार प्रत्येक द्वारा प्राप्त 30,00,000/- (तीस

लाख रुपये) की राशि उन्हें वापस लौटानी चाहिए थी। ऐसा न करने पर वादी क्र. 4-6 यह स्थापित करने में विफल रहे कि समझौता याचिका पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करने की दृष्टि से, प्रतिवादियों द्वारा उनके साथ कोई धोखाधड़ी की गई थी।

(एच) वादपत्र के अवलोकन पर, यह पाया जाता है कि वाद अनुसूची संपत्ति की 13 वस्तुओं का अलग-अलग मूल्यांकन था और इसलिए वादियों के वाद अनुसूची की सम्पत्तियों के हिस्से एक साथ लिए गए होते । हालाँकि , वादी क्रमांक 4-6 द्वारा प्रत्येक ने 30 लाख रुपये की राशि स्वीकार की। सम्पूर्ण वाद अनुसूची संपत्तियों में अपना अधिकार , स्वत्व और हित त्यागकर वाद की वस्तुओं के संबंध में एक मौद्रिक हिस्सा प्राप्त करने के बाद , वादीगण ने सम्पूर्ण वाद वस्तुओं के संबंध में अपने अधिकार , स्वत्व और हित को त्यागने का फैसला किया था।

उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में दिनांक 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के फैसले को रद्द करने के संदर्भ में मामले के उपरोक्त तथ्यों पर विचार नहीं किया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 27 अप्रैल, 2013 में दिए गए कारणों पर भी विचार नहीं किया है जिसके द्वारा लोक अदालत की डिक्री पर वादी क्रमांक 4-6 द्वारा उठाई गई आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था।

33. इस न्यायालय ने **रूबी सेल्स एंड सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य,** (1994) 1 एससीसी 531 में देखा है कि एक सहमति डिक्री एक समझौते की उत्पत्ति है और एक समझौते को अमान्य कर देने वाले किसी भी आधार पर रद्द की जा सकती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि सहमति डिक्री या समझौता ज्ञापन पर आधारित डिक्री को रद्द करते समय विधि के न्यायालय को जिस स्तर की सावधानी बरतनी चाहिए, वह

कम से कम उसी मात्रा की होगी, जिसे एक समझौते को अमान्य घोषित करते समय रखा जाना चाहिए।

34. **पुष्पा देवी भगत (मृत) विधिक प्रतिनिधि साधना राय के माध्यम से बनाम राजिंदर सिंह और अन्य,** (2006) 5 एससीसी 566 , में इस न्यायालय ने माना कि चूंकि समझौता डिक्री के खिलाफ कोई अपील नहीं होगी, ऐसे डिक्री से बचने के इच्छुक पक्ष के लिए एकमात्र विकल्प सहमति डिक्री को उस न्यायालय के समक्ष चुनौती देना होगा जिसने इसे पारित किया और यह साबित करना होगा कि डिक्री का आधार बनने वाला समझौता अमान्य था। इसलिए यह जरूरी है कि सहमति डिक्री की शर्तों से बचने की मांग करने वाले पक्ष को इसे पारित करने वाले न्यायालय के समक्ष यह स्थापित करना होगा कि जिस समझौते पर सहमति डिक्री आधारित है, वह अमान्य या अवैध है।

35. यह कानून की स्थापित स्थिति है कि जहां किसी समझौते के पक्षकार के खिलाफ धोखाधड़ी का आरोप लगाया जाता है , तो उक्त आरोप को दृढ़ता से साबित करना होगा, ताकि इस आधार पर समझौते से बचा जा सके कि ऐसे पक्षकार को समझौते में शामिल होने के लिए प्रेरित करने के लिए किसी पक्ष के साथ धोखाधड़ी की गई थी।। इसी तरह, समझौता डिक्री की शर्तों को तब तक टाला नहीं जा सकता , जब तक कि धोखाधड़ी का आरोप साबित न हो जाए। आपत्तिकर्ताओं की ओर से धोखाधड़ी के किसी भी निर्णायक साक्ष्य के अभाव में , उच्च न्यायालय वर्तमान मामले में समझौता डिक्री को रद्द नहीं कर सकता था।

36. वर्तमान मामले के उपरोक्त तथ्यों पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि 07 जुलाई, 2012 के लोक अदालत के आदेश जिसमें दोनों के बीच समझौता दर्ज किया गया था, को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के फैसले हेतु कोई आधार नहीं

दर्शाया गया था। लोक अदालत के आदेश के निष्कर्षों पर विचार किए बिना, उक्त आदेश को रद्द करने के उच्च न्यायालय के फैसले को स्थिर नहीं रखा जा सकता है। उच्च न्यायालय का ऐसा निर्णय कानून के स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है जो पक्षकारों के बीच समझौते या सहमति के आधार पर आदेशों की पवित्रता और अंतिमता की रक्षा करना चाहते हैं।

37. इसलिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के दिनांक 17 अप्रैल, 2015 के आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है और लोक अदालत का आदेश, दिनांक 07 जुलाई, 2012 जिसके तहत मूल वाद क्र.- 876/2004 के पक्षकारों के बीच समझौता दर्ज किया गया था को बहाल किया जाता है । अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

38. पार्टियों के बीच संबंधों को ध्यान में रखते हुए , पार्टियों को अपना-अपना खर्च वहन करने का निर्देश दिया जाता है।

अपीलें स्वीकार

This Document has been Translated and Verified by

PANKAJ SHARMA

Digitally signed by PANKAJ SHARMA
Date: 2023.11.17 12:15:33 +0530